धर्म के दशलक्षण

~ कविवर मंगतराय जी

अब छोड़ अनादि भूल, विषय सुख तूल, जगत दुःखमूल,

कर्म भ्रमभारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम क्षमा

तन क्रोध घटा घनघोर, उठी चहुँ ओर, शक्ति का मोर,

जो शोर मचावे, तब हिंसा अंकुर भावभूमि जम जावे ।

नहीं गिने सबल-बलहीन, अनाथ अरु दीन, करे नित क्षीण,

रात अरु दिन में, सब भूल जाए उपकार हाय इक छिन में ।।

द्वीपायन क्रोध उपाया, द्वारावती नगर जलाया

मन समता भाव न आया, हो मुनि नरक पद पाया।।

तप ऋद्धि सिद्धि भरपूर, क्रोध कर दूर, भाव मुनि सूर,

वे शुधउपयोगी, सब मारन ताड़न सहैं, जैन के योगी।

मुनि उत्तम क्षमा विचार, सहें दुःख भार, क्रोध को मार,

दया आचारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम मार्दव

यह जाति लाभ कुल रूप, ज्ञान तप भूप, जो शक्ति अनूप,

आठ मद मानो, कुछ पर आश्रित कुछ छिनक रूप पहिचानो।

है पर्वत सम मद मान, चढे अनजान, लघु जिय जान,

जीव को हेरे, वह इनको देखे क्षुद्र तभी मुँह फेरे ।।

इक इन्द्री सुर हो जावे, उत्तम नीचा कुल पावे ।

राजा हो रंक कहावे, क्यों मद में चित भरमावे ।।

तज शयन सेज गज - बाज, जगत का राज, करें निज काज,

भूमि पर सोते, मुनि पाव पयादा चलें मानमद खोते।

सो उत्तम मार्दव जान, विनय सम्मान, तजो अभिमान,

धर्म परिहारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम आर्जव

है कपट निपट दुःख भार, बढ़े संसार, कुगति दातार,
विचारो मन में, नहीं चढे काठ की हंडी फेर अगन में ।

नहीं मिले कपट धन-माल, यह नटखट चाल, खुले भ्रम जाल,
अनेक जतन की, जो रूप धरो सो लखे रीति दर्पण की ।।

नहीं छुपे अंत खुल जावे, जो कपटी बात बनावे ।
फिर कोई नहीं पतियावे, क्यों माया मन भरमावे ।।

मन-वचन-काय त्रिकयोग, शुद्ध उपयोग, धार तज भोग,
मुनि बड़भागी, सो उत्तम आर्जव धर्म धरें वैरागी ।

जो मन में करो विचार, वही उच्चार, वही व्यवहार,
करो परचारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम सत्य

नित बोलो वचन संभार, झूठ को टार, निंद परिहार,

कठोर कराला, जो देखो जानो वही कहो तत्काला ।

जिस सच में हो जियघात, उठे उत्पात, झूठ सम भ्रात,

जान विसरावो, नहीं राग-द्वेष से बात से बात मिलावो । ।

वसु राजा नरक सिधारा, पर्वत का वचन सुधारा ।

नारद गया स्वर्ग मँझारा, है बात विदित संसारा ।।

पशु-पक्षी वचन विहीन, कर्म आधीन, मनुष्य परवीन,

जन्म का लाहा, तिन लिया जिन्होंने जग में सत्य निवाहा ।

हो जगत विषै परतीति, करैं सब प्रीति, सत्य की रीति,

गहो नर-नारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम शौच

है लोभ बड़ा इक पाप, देत संताप, सहे दुःख आप,

जो मन में धारे, घरबार छोड़ रणभूमि मरे अरु मारे।

जा बसे अनारज देश, धरे बहु भेष, धर्म का लेश,

न मन में लावे, जल डूबे वन गिरि भ्रमतैं जान गँवावे ।।

आशा की गले में फाँसी, क्या हुआ भये वनवासी ।

विष रहा काँचुली नाशी, मन रागरु भये उदासी।।

क्या गंग- जमुन स्नान, तीर्थ जलपान, मैल की खान,

देह ज्यों धोवे, बिन किये तपस्या दोष दूर नहीं होवे ।

पर द्रव्य की ममता त्याग, सहित वैराग, शौच में लाग,

स्व पर हितकारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम संयम

मन मृग का तन वनवास, इन्द्रियाँ जास, मृगीगण पास,

केलि नित करते, तेरे धर्म खेत को फिरे रात दिन चरते ।

रे! जीवरूप किस्सान, तू चादर तान, नींद अज्ञान,

पड़ा क्यों सोवे, जब उजड़ गया सब खेत बैठ कर रोवे । ।

मन इन्द्रिय विषयन पागे, ते कभी न हित सों लागे।

भामण्डलवत् अनुरागे, उत्पात में प्राण वे त्यागे ।।

ले मन इन्द्रिय को जीत, जगत भयभीत, जो संयम प्रीति,

करो ग्रह शिक्षा, त्रस थावर रक्षा करो धारके दीक्षा ।

मुनि मन- इन्द्रिय निरोध, जो संयम शोध, धरें चित बोध,

प्रमाद विसारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम तप

अनशन अवमौदर्य करो, परिसंख्यान वरो, सुरस परिहरो,

कसो निजकाया, संन्यास सुधारो षट्तप बाह्य बताया।

प्रायश्चित स्वाध्याय विचार, वैय्यावृत धार, समाधि संभार,

छोड़ तन ममता, नित कीजै उत्तम ध्यान जो आवे समता ।।

इच्छा की पवन थमावे, मन का जल अचल बनावे ।

तब ज्ञान झलक दरसावे, निर्वाण तुरत पद पावे।।

जस लाभ ख्याति की आस, सकल को नाश,

करो तप वीरा, दो पंच इन्द्रिन को दण्ड सहो तन पीरा ।

है यही मनुष गति सार, जगत उद्धार, लहै तप भार,

मुनि भवतारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम त्याग

त्रस थावर हिंसा टार, ज्ञान उपकार, दान विधि चार,

त्याग के माँहि, सो बिना मुनिव्रत पूरण सधते नाहीं ।

औषध-श्रुत-अभय-आहार, जो चार प्रकार, दो पात्र विचार,

होय निस्तारा, समदृष्टि श्रावक - मुनि पुरुष या दारा ।।

जिनमत निन्दक नर नारी, द्रोही कलुषित आचारी ।

ये हैं कुपात्र दुःखकारी, नहीं कहे दान अधिकारी ।।

रथ गऊ रजत गज बाज, देह तुल साज, तिया घर राज,

लोह कंचन को, है व्युत्पात संक्रांति दान दुर्जन को ।

बिन परख दया का दान, दुःखी पहचान, सबै सम जान,

देत आगारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम आकिंचन्य

चपला सम चपल निहार, लक्ष्मी संसार, है कुलटा नार,
नहीं कहीं जमती, यह छोड़ सुकुल भरतार नीच सों रमती ।

हैं छाया माया एक, पकड़ कर टेक, जो गए अनेक,
छाँव सम ढलती, पर यह न किसी के साथ पैंड भर चलती ।।

इसने जो लोग विसारे, वह जग में भ्रमते सारे ।
जो इससे हुए किनारे, तज भव भ्रम मुक्ति सिधारे ।।

जीरण तृण सम धनमाल, छोड़ तत्काल, आस जग टाल,
चले गए वन को, आकिंचन धर्म संभाल शुद्ध कर मन को ।

मुनि छोड़ जगत का वास, त्याग सब आस, गहे संन्यास,
मोक्ष अधिकारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

उत्तम ब्रह्मचर्य

लख तिया पुरुष सम तात, सुता सुत मात, बहन अरु भ्रात,
जो नाता गिनते, सो नर नारी निज सुगति महल को चिनते ।

हो उनका यश विख्यात, कलंक नश जात, पाप को घात,
लहें जगभूषण, हुआ सीता का उपसर्ग शील का दूषण ।।

लख अगनि कुण्ड में धाई, सीता ने टेर लगाई।
हो शील विषै चपलाई, तो देह अभी हो छाई ।।

जब कूदी अगनि मंझार, वो लई संभार, अग्नि हुई वारि,
कमल खिल आए, रच रत्न सिंहासन पूजन को सुर धाये ।

'मंगत' यह शील विचार, ब्रह्मचर्य सार, मोक्ष दातार,
को धोक हमारी, दशलक्षण धर्म विचार जीव संसारी ।।

पोष वदी तिथी अष्टमी, उगणिस सन पंथास।
जैनी वरणी धर्मदास, उर धर परम हुलास ।।